शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir जनवरी २०१४, संस्करण १५

गुरु के मुख से सुना हुआ, शास्त्र से पढ़ा हुआ और अपने अन्तर में जो अनुभव होता है, तीनों का मिलन होना चाहिए ।

प्रिय आत्मन्, सप्रेम जय गुरुदेव! सिद्ध मार्ग ई-पत्रिका का पन्द्रहवाँ अंक प्रस्तुत है । इस अंक में गुरुदेव महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व मगोद में दिये गये प्रवचन के सम्पादित अंश प्रस्तुत हैं ।

"श्रीगुरुदेव का प्रवचन"

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि यदि हम अपने आप को साधक मानते हैं तो हमें तीन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए । जिसको हमने अपना गुरु माना है और उनके पास से जो ज्ञान प्राप्त होता है, जो शास्त्र हम अध्ययन करते हैं और जिस शास्त्र के माध्यम से हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है, जो हमने श्रवण किया है, जो हमने पढ़ा है और जो मनन करते करते हमारे अन्तर में भी कुछ अनुभव होते हैं, अगर हम वास्तविक रूप से उस मार्ग के ऊपर चलते हैं तो तीनों- गुरु के मुख से सुना हुआ, शास्त्र से पढ़ा हुआ और अपने अन्तर में जो अनुभव होता

साधना थोड़ी थोड़ी रोज करनी चाहिए, रोज करेंगे तभी वह साधना हमारे लिए फलित होगी ।

है, तीनों का मिलन होना चाहिए । ऐसा नहीं गुरु से कुछ सुना, शास्त्र में कुछ पढ़ा और अनुभव कुछ और होना । आज का समय व्यापारमय हो गया है, हर वस्तु हम बेचने के लिए तैयार हैं और सामने वाला जो ग्रहणकर्ता होता है वो भी तब तक ग्रहण नही करता है जब तक वह वस्तु मार्केटेबल न हो । अगर कोई यहाँ आये और पूछे कि मुझे क्या करना है तो कहेंगे कि जाकर मन्दिर में बैठो । तो कहेंगे कि बस.. और क्या करना है ? मन्दिर में बैठो, नहीं और भी तो कुछ होगा ? और कुछ नहीं करना है, मन्दिर में ही बैठो । फिर प्रश्न होता है कि मन्दिर में बैठ कर करूँ क्या ? पहले हम को मन्दिर में बैठना सीखना चाहिए । जब तक मन्दिर में बैठना ही नहीं आयेगा आगे करोगे क्या ? मन चंचल है, मन में विचार इतने चलते हैं कि घण्टा दो घण्टा एक आसन में स्थिर हो कर बैठना सीखो । हम कहते हैं कि मैं साधना करूंगा । साधना में पुरुषार्थ हमेशा करते रहना चाहिए क्योंकि साधना में स्थिर होना बहुत जरूरी है । और हमें ऐसा पुरुषार्थ नही करना चाहिए कि एक दिन में दस घण्टे बैठ लिए और हम कहते हैं मैंने पुरुषार्थ कर लिया । मैं एक उदाहरण देता हूँ कि क्या हम दस दिन का भोजन एक दिन में कर लेते हैं ? वह भोजन या तो जाम हो जायेगा या फिर बहते रहेगा और बीच बीच में थोड़ा दर्द भी होगा । इस कारण हम थोड़ा थोड़ा करके दस दिन का दस दिन में ही खाते हैं । तो वैसे ही साधना भी थोड़ी थोड़ी रोज करनी चाहिए । रोज करेंगे तभी वह साधना हमारे लिए फलित होगी । पुरुषार्थ

भी एकाग्र होना चाहिए क्योंकि मन परिवर्तित होते रहता है । परन्तु जो अहं यानि मैं हूँ, वो मैं उस मन से अलग हूँ ये साधक को समझना चाहिए । मैं मन से अलग कैसे ? क्योंकि जो विचार होता है वो विचार भी मैं ही कर रहा हूँ । हमारे अन्दर मन एक इन्द्रिय है, वेदान्त उसे चतुष्टय अन्तःकरण कहता है । मैं, जिसको हम मैं मानते हैं, शास्त्र उसको आत्मा कहता है, चैतन्यम् आत्मा । वो आत्मा उस इन्द्रिय मन से अलग है, भिन्न है । जो सोच विचार चलते हैं और जो हम कर्म करते हैं उसका फल उस पर असर करता है, संगति उसके ऊपर असर करती है और जो हम पढ़ते हैं वो भी उसके ऊपर असर करता है । और फिर एक अपना भी विचार चलता रहता है । अगर हम ये सोचें कि जो मैं सोच रहा हूँ यह मेरा विचार है तो अगर कोई अच्छे विद्वान् के पास जाओ, आपको वो विद्वान् ऐसे हिला देगा कि आपको पता ही नहीं चलेगा कि मैं सोचता था कि मैं तो पक्का हूँ कि ये मेरे विचार हैं । परन्तु वह विचार मेरा है ही नहीं, वो कितनी जगहों से इकट्ठा करके मैंने सोचा है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ये मेरा विचार है । अभी अभी यात्रा में एक माता जी जो १९७९ से इस मार्ग से जुड़ी हैं बाबाजी का गुरुगीता रोज सुनती हैं, बाबाजी के चित्र के सामने रोज दिया जलाती हैं, अगरबत्ती जलाती हैं, मुझे पूछती हैं कि ये सब करके होता क्या है ? मैं आश्चर्यचकित रह गया कि ३० वर्ष हो गये और आज पूछ रहीं हैं तो मैं इसको क्या बताऊँ ? फिर पूछा कि मैं और क्या करूँ क्योंकि

मैं, जिसको हम मैं मानते हैं, शास्त्र उसको आत्मा कहता है, चैतन्यम् आत्मा । वो आत्मा उस इन्द्रिय मन से अलग है, भिन्न है ।

आप अपने आप में विचार कीजिए कि जो मैं साधना करता हूँ उस साधना में मेरा मन कितना लगता है, उस साधना में मेरी कितनी रुचि है ।

बच्ची बड़ी हो गयी है पन्द्रह-सोलह साल की और वो कभी कभी इसका विरोध करती है । तो मैंने कहा जप करो । फिर पूछती है उससे क्या होगा ? मैंने कहा तुम करना शुरु करो, फिर पूछती है कितना करूँ ? मैंने कहा कम से कम रोज दस माला । हम सोचते हैं हम प्रति रविवार यहाँ आते हैं, प्रतिदिन अपने घर में पूजा करते हैं, ज्योत जलाते हैं, पुष्प चढ़ाते हैं, धूप करते हैं इत्यादि, इत्यादि जो कुछ भी करते हैं लेकिन एक प्रश्न उठता है कि ये शरीर से साधना कर तो रहा है लेकिन पाठ तो सी.डी. प्लेयर भी रोज करता है लेकिन सी.डी. प्लेयर ने कभी ये नहीं कहा कि मुझे साक्षात्कार हुआ है । तो शायद हम भी काफ़ी समय तक उस सी.डी. प्लेयर के जैसे करते हैं । ॐ नमः शिवाय कहीं चल रहा है, जो हमारा मन्त्र वो कहीं चल रहा है, परन्तु पता ही नहीं कि क्या चल रहा है । आप अपने आप से पूछिए, आप अपने आप में विचार कीजिए कि जो मैं साधना करता हूँ उस साधना में मेरा मन कितना लगता है, उस साधना में मेरी कितनी रुचि है । क्या मुझे पुनः पुनः याद दिलाना पड़ता है कि आश्रम में रहते हो रोज प्रातः पाठ में जाओ, शाम पाठ में जाओ ? या फिर अपने आप अन्तर से आवाज आती है कि अभी समय होने जा रहा है मुझे मन्दिर जाना चाहिए । जब रुचि हो गयी है तो हमें कोई कहता नहीं कि चलो अब मन्दिर की ओर चलो । रास्ते में अगर कोई मिल जाता है तो कहता है कि चलो गोशाला घूम के आते हैं जब मन्दिर में धूप, दीप और नैवेद्य के

साधना करने के लिए हमें आसन लगाना सीखना चाहिए, बैठना सीखें क्योंकि हम जब तक बैठना नहीं सीखते हैं तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते ।

मन्त्र हो जाएँगे तब मन्दिर चलेंगे । वो विचार अगर हमें गोशाला की ओर ले गया तो लौटते हुए मन्दिर में ॐ महादेव शिव शंकर शम्भो... हो रहा होता है और हमें पता भी नहीं चलता कि एक घण्टा कहाँ निकल गया । मैं किसी की आलोचना नहीं कर रहा हूँ और गलत भी नहीं बोल रहा हूँ क्योंकि वर्षों से इस मार्ग पर लगा हूँ तो दोनों देखता हूँ, जो समय से और जो समय से पहले पहुँच जाते हैं और अपना आसन ग्रहण कर लेते हैं । हम इस शरीर से तो मन्दिर में समय से आ जाते हैं परन्तु हमें अपने मानसिक रूप से भी यहाँ समय से आना चाहिए । भटकते हुए उस मन को एकाग्र करना है । साधना करने के लिए हमें आसन लगाना सीखना चाहिए, बैठना सीखें क्योंकि हम जब तक बैठना नहीं सीखते हैं तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते । बैठकर स्थिर हो जाएँ, स्थिर होना मतलब एक बार जो मनुष्य बैठ गया है, सुन रहा है, देख रहा है और अनुभव कर रहा है कि क्या हो रहा है मेरे अन्तर में । हमारे देश वासियों में मैं मानता हूँ सूक्ष्मता की कमी है । साधना की दृष्टि से भी सूक्ष्मता की आवश्यता है और जीवन के लिए भी सूक्ष्मता की आवश्यकता है । दो लोग आपस में बात कर रहे हों तो तीसरा आदमी आ जाता है, उनको अच्छी तरह से जानता नहीं है और उन दोनों लोगों के बीच में बोलने लग जाता है। समझना चाहिए कि दो व्यक्ति आपस में बात कर रहे हैं या तो मैं रुकूँ जब तक उनकी बात खत्म हो या वे लोग इशारा करें तब

बोलना चाहिए । साधक इन सब बातों को समझने लगता है । आप अगर ये सोचते हैं कि मैं यहाँ माला चढ़ाऊँ, धूप करूँ, दीप करूँ, पैसा चढ़ाऊँ - ये सब ही साधना नहीं है । बाबा जी कहते थे कि अगर वह मनुष्य बाहर जाकर औरों का अपमान करता है तो उसकी साधना का कोई महत्त्व नहीं । जब तक हम इस समस्या को हल नहीं करते हैं तब तक साधना का कोई महत्त्व नहीं, वो साधना सी.डी. प्लेयर जैसी है । हमें भगवान् की साधना के साथ साथ सभी का सम्मान करना चाहिए तभी हमारी वह साधना लाभप्रद है ।

हमें भगवान् की साधना के साथ साथ सभी का सम्मान करना चाहिए तभी हमारी वह साधना लाभप्रद है ।

"सद्गुरुनाथ महाराज की जय"